सिद्धशिला
एवं
सिद्ध भगवान

संकलन एवं रचना
गणिनीप्रमुख आर्यिका ज्ञानमती

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 486
ISBN-978-93-84003-96-8

सिद्धशिला एवं सिद्धभगवान

श्री गौतमस्वामी प्रणीत
चतुर्थकालीनवाणी-निषीधिका दण्डक
एवं त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति आदि से

-संकलन एवं रचना-

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी,
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

ऋषभगिरि मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र में विराजमान 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव प्रतिमा निर्माण की प्रेरणास्रोत दिव्यशक्ति चारित्रचन्द्रिका परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी के 61वें आर्यिका दीक्षा दिवस-वैशाख वदी दूज (24 अप्रैल 2016) के पावन अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.फोन नं.- (01233) 280184, 280994
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com, rk195057@yahoo.com
Website : www.jambudweep.org , www.encyclopediaofjainism.com
Facebook : divyashaktigyanmatimataji

COURTESY—JAIN BOOK DEPOT
C/o Shri Nabhi Kumar Manav Kumar Jain
C-4, Opp. PVR Plaza, Cannaught Place, New Delhi-1
Ph.-011-23416101-02-03/Website : www.jainbookdepot.com

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2542, वैशाख वदी दूज	मूल्य
1100 प्रतियाँ	(24 अप्रैल 2016)	16/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं।

-: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :-

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी
(दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत)

-: मार्गदर्शन :-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

-: निर्देशक एवं सम्पादक:-

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

-: प्रबंध सम्पादक :-

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

सिद्धशिला पर राजते, सिद्ध अनंतानंत।
सिद्ध त्रिकालिक को नमूँ, पाऊँ सौख्य अनंत।।

बीसवीं सदी में मुनि परम्परा को जीवन्त करने वाले प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागर जी महाराज के तीन बार दर्शन करने वाली, उनके प्रथम पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से आर्यिका दीक्षा को प्राप्त कर, आर्यिका ज्ञानमती नाम को पाकर, पूरे विश्व में ज्ञान का अलख जगाने वाली दिव्यशक्ति, सरस्वती की प्रतिमूर्ति पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने साहित्य क्षेत्र में एक कीर्तिमान स्थापित किया है।

वर्तमान के व्यस्त जीवन में लोगों को बड़े-बड़े ग्रंथों को पढ़ने का समय नहीं है अतः उनके ज्ञान को बढ़ाने के लिए पूज्य माताजी ने ग्रंथों से निकाल-2 कर मक्खन स्वरूप **'जिनागम नवनीत''** जैसी छोटी-छोटी पुस्तकों का संकलन किया है। उसी श्रृंखला में यह **'सिद्धशिला एवं सिद्ध भगवान'** पुस्तिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसको पढ़कर मनुष्य अपने भावों को ऊपर उठाते हुए, अपने जीवन में पुरुषार्थ करते हुए एक दिन अपनी आत्मा को सिद्ध परमात्मा बना सकता है।

पूज्य माताजी ने स्वाध्याय के द्वारा चारों अनुयोगों का तलस्पर्शी ज्ञान अर्जित करके बाल, युवा, वृद्ध, विद्वान सभी की योग्यतानुसार बालविकास से लेकर अष्टसहस्री, नियमसार, समयसार, षट्खण्डागम जैसे 400 ग्रंथों का लेखन, सृजन किया है। भगवान महावीर के शासन में पूज्य माताजी सर्वप्रथम आर्यिका हैं जिन्होंने इतने विपुल साहित्य का निर्माण किया है।

वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला इसी तरस से सत्साहित्य का, महान ग्रंथों का प्रकाशन कर जिनधर्म की प्रभावना में अग्रसर हो यही मंगल भावना है। पूज्य माताजी दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें, यही जिनेन्द्रदेव से मंगल प्रार्थना है।

प्रस्तावना

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

सिद्धाः सिद्ध्यंति सेत्स्यंति, त्रैकाल्ये ये नरोत्तमाः।
सर्वार्थसिद्धिदातारः, ते नः कुर्वन्तु मंगलम्।।

इस संसार में प्रत्येक प्राणी की आत्मा भगवान आत्मा है। पुरुषार्थ के द्वारा त्याग, संयम, व्रत, उपवास आदि करके, दीक्षा को धारण करके अनुक्रम से स्वर्ग, मोक्ष को प्राप्त किया जा सकता है।

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, दिव्यशक्ति, चारित्रचन्द्रिका परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने संसारी प्राणियों को सिद्धशिला एवं सिद्धभगवान के बारे में ज्ञान कराने के लिए पृथक् से एक पुस्तक का संकलन किया है जिसे पढ़कर सभी को अच्छी तरह से ज्ञात हो जाएगा कि सिद्धशिला कहाँ है ? सिद्ध भगवान कहाँ विराजमान हैं ? सिद्धों का सुख कैसा है ? और इन सबको जानने के बाद मनुष्य के मन में अवश्य यह भाव आएगा कि हम भी ऐसा कार्य करें जिससे हमें भी एक दिन सिद्ध बनने का सौभाग्य प्राप्त हो।

इस पुस्तिका में पूज्य माताजी ने सर्वप्रथम चतुर्थकालीन श्री गौतमस्वामी के मुख से निकले प्रतिक्रमण पाठ से सिद्धों की निषीधिका का वर्णन किया है। जो सिद्ध हैं, बुद्ध हैं, कर्मचक्र से मुक्त हैं, नीरज हैं, निर्मल हैं ऐसे सिद्धों को श्री गौतमस्वामी ने स्वयं विशुद्ध भावों से पंचांग नमस्कार किया है। इसके बाद त्रिलोकसार ग्रंथ से सिद्धशिला एवं सिद्ध भगवान का विस्तृत विवेचन है। सिद्धों की अवगाहना का भी सुन्दर वर्णन है। पुनः पूज्य माताजी ने सिद्धलोक और सिद्धशिला के बारे में सरल भाषा में बताते हुए लिखा है कि उत्कृष्ट, मध्यम एवं जघन्य अवगाहना वाले सिद्ध भगवान सिद्धशिला से कितने ऊपर जाकर विराजमान है ? कौन से तीर्थंकर किस आसन से मोक्ष गए हैं ? सिद्धों का सुख कैसा है ? आदि विषयों का बहुत सुन्दर वर्णन है। श्री यतिवृषभाचार्य विरचित तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ से सिद्धों के निवास स्थान, अवगाहना, सुख एवं भावना का भी सुन्दर वर्णन दिया है। सिद्ध वंदना में पुनः सिद्धशिला एवं सिद्धों का वर्णन है। प्राकृत सिद्धभक्ति में श्रीकुंदकुंददेव ने जल, थल, आकाश आदि जहाँ से जो सिद्ध हुए हैं उन सबकी वंदना की है। इस प्राकृत सिद्धभक्ति का पद्यानुवाद भी इसमें दिया है जिससे अर्थ का ज्ञान होता है।

अंत में प्रशस्ति है। इस छोटी सी पुस्तक में पूज्य माताजी ने पुनः-पुनः सिद्धों का वर्णन करके भव्यजीवों के लिए अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए शुभ अवसर प्रदान किया है। परोपकार की भावना से ओतप्रोत पूज्य माताजी दीर्घकाल तक इस पृथ्वी पर सभी जीवों को अपने ज्ञान से सिंचित करती रहें, यही मंगल भावना है।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान– टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.
जन्मतिथि– आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991, (22 अक्टूबर सन् 1934)
जाति– अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र–** गोयल, **नाम–** कु. मैना
माता-पिता– श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन
आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत– ई. सन् 1952, बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन
क्षुल्लिका दीक्षा– चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम-क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा– वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व– अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं लगभग 400 ग्रंथों की लेखिका।

डी.लिट्. की मानद उपाधि– सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा 8 अप्रैल 2012 को ''डी.लिट्.'' की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा– हस्तिनापुर में जंबूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा-भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्मित 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा, महावीर जी तीर्थ पर महावीर धाम में पंचबालयति मंदिर, शिर्डी में ज्ञानतीर्थ, सम्मेदशिखर में आचार्य श्री शांतिसागर धाम, ग्वालियर में चिन्तामणि पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा– पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की तत्कालीन राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।

शैक्षणिक प्रेरणा– 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार, ऑनलाइन जैन इनसाइक्लोपीडिया आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा– जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) आचार्य श्री शांतिसागर सम्मेद शिखर ज्योति रथ (2014) भगवान ऋषभदेव विश्वशांति कलश यात्रा रथ-मांगीतुंगी (2015) के दो रथों का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

–जीवन प्रकाश जैन (प्रबंध सम्पादक)

ईसवी सन् 1972 में पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से स्थापित उक्त संस्था के द्वारा जम्बूद्वीप रचना के निर्माण हेतु मेरठ (उ.प्र.) के ऐतिहासिक तीर्थ हस्तिनापुर में नशिया मार्ग पर जुलाई 1974 में एक भूमि क्रय की गई, जहाँ सर्वप्रथम 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की अवगाहना प्रमाण सात हाथ (सवा दस फुट) ऊँची खड्गासन प्रतिमा विराजमान करने हेतु फरवरी 1975 में एक लघुकाय जिनालय का निर्माण किया गया, जो सन् 1990 में एक अनोखे 'कमल मंदिर' के रूप में निर्मित हुआ है। यहाँ विराजमान कल्पवृक्ष भगवान महावीर से यह अतिशय क्षेत्र निरंतर प्रगति पथ पर अग्रसर होता हुआ नित्य नये निर्माणों के द्वारा संसार में अद्वितीय पर्यटन स्थल के रूप में प्रसिद्ध हुआ है। इस प्रतिमा के दर्शन करके भक्तगण अपनी मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं।

जम्बूद्वीप निर्माण का प्रथम चरण– जुलाई सन् 1974 में रखी गई नींव के आधार पर जम्बूद्वीप के बीचोंबीच में सर्वप्रथम आगम वर्णित सुमेरुपर्वत (101 फुट ऊँचा) का निर्माण अप्रैल सन् 1979 में एवं सन् 1985 में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण पूर्ण हुआ। सोलह जिनमंदिरों से समन्वित उस सुमेरुपर्वत के अंदर से निर्मित 136 सीढ़ियों से चढ़कर श्रद्धालु भक्त समस्त भगवन्तों के दर्शन करके जब सबसे ऊपर पाण्डुकशिला के निकट पहुँचते हैं, तो नीचे जम्बूद्वीप रचना के सभी नदी, पर्वत, मंदिर, उपवन आदि दृश्यों के साथ-साथ हस्तिनापुर के आसपास के सुदूरवर्ती ग्रामों का भी प्राकृतिक सौंदर्य देखकर फूले नहीं समाते हैं।

यात्री सुविधा– हस्तिनापुर तीर्थ में जम्बूद्वीप स्थल के पूरे परिसर में संस्थान द्वारा कार्यालय का सक्रिय संचालन किया जाता है। वहाँ यात्रियों के ठहरने हेतु आधुनिक सुविधायुक्त 200 कमरे, 50 से अधिक डीलक्स फ्लैट एवं अनेकों गेस्ट हाउस (बंगले) बने हुए हैं। इसके साथ ही यहाँ सुन्दर भोजनालय है जहाँ यात्रियों को सुविधापूर्वक शुद्ध भोजन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त 2 किमी. दूर हस्तिनापुर सेन्ट्रल टाउन में सरकारी अस्पताल, डाकखाना, बाजार, इंटरकालेज तथा अन्य शिक्षण संस्थाएँ आदि सभी आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

हस्तिनापुर कैसे पहुँचे ?– भारत की राजधानी दिल्ली से 110 किमी. पश्चिमी उत्तरप्रदेश में जिला-मेरठ से 40 किमी. दूर हस्तिनापुर तीर्थ है। राजधानी दिल्ली से हस्तिनापुर के लिए अंतर्राज्यी बस अड्डे अथवा आनंद विहार बस अड्डे से उत्तरप्रदेश रोडवेज तथा डी.टी.सी. बसों की निरंतर सेवा उपलब्ध है। मेरठ से भी प्रति आधे घंटे के अंतराल से जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर पहुँचने हेतु रोडवेज की बसें सुलभता के साथ उपलब्ध रहती हैं। 'जम्बूद्वीप' के नाम से ये बसें चलती हैं जो सीधे जम्बूद्वीप के सामने ही रुकती हैं और जम्बूद्वीप से ही मेरठ, दिल्ली, तिजारा आदि यात्रा हेतु बसें उपलब्ध रहती हैं। दिल्ली और मेरठ के बीच रेल सेवा भी है। देश-विदेश के यात्रीगण हस्तिनापुर पधारकर इस धरती का स्वर्ग मानी जाने वाली 'जम्बूद्वीप रचना' के दर्शन करें और मानसिक शांति का अनुभव करते हुए मनवांछित फल प्राप्त करें, यही मंगलकामना है।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खारी बावली, दिल्ली-6।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
11. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
12. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
13. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.
14. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
15. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
16. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।
17. श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-4, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली

विषयानुक्रमणिका

	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	सिद्धशिला एवं सिद्ध भगवान (श्री गौतमस्वामी प्रणीत-प्रतिक्रमण पाठ से)	1
2.	सिद्धशिला एवं सिद्ध भगवान (विस्तृत विवेचन-त्रिलोकसार ग्रंथ से)	4
3.	सिद्धों की अवगाहना का वर्णन	6
4.	सिद्धलोक और सिद्धशिला-गणिनी ज्ञानमती	9
5.	सिद्धों का सुख	11
6.	सिद्धलोक प्रज्ञप्ति (श्री यतिवृषभाचार्य विरचित-तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ से)	13
7.	सिद्ध वन्दना	27
8.	प्राकृत सिद्धभक्ति (श्री कुंदकुंददेव कृत)	29
9.	प्राकृत सिद्धभक्ति का पद्यानुवाद-गणिनी ज्ञानमती	30
10.	प्रशस्ति	32

सिद्धशिला एवं सिद्ध भगवान

श्री गौतमस्वामी प्रणीत (प्रतिक्रमण पाठ से)

मंगलाचरण

श्रीमते वर्धमानाय नमो नमितविद्वषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदायते।।1।।

अर्थ—श्री वर्धमान स्वामी को नमस्कार हो कि जिन्होंने अपने अंतरंग कर्मशत्रु एवं बाह्य उपसर्ग करने वाले शत्रु को भी अपने चरणों में झुका लिया है एवं जिनके ज्ञान के अंतर्गत हुआ तीनों लोक जिनके केवलज्ञान में गोखुर-गाय के खुर के सामन छोटा सा प्रतिभासित होता है।।1।।

सिद्धशिला एवं सिद्ध भगवान (निषीधिका दण्डक से)–

''इसिपब्भारतलग्गयाणं सिद्धाणं बुद्धाणं कम्मचक्कमुक्काणं णीरयाणं णिम्मलाणं,..... एदेहं मंगलं करेमि भावदो विसुद्धो सिरसा अहिवंदिऊण सिद्धे काऊण अंजलिं मत्थयम्मि, तिविहं तियरणसुद्धो''

संस्कृत टीका—सिद्धानां निषीधिकाः। कथम्भूतानां सिद्धानाम् ? **इसिपब्भारतलग्गयाणं।** ईषत्प्राग्भारो मोक्षशिला। तस्य तलमुपरितनभागः।

तत्र गतानां स्थितानाम्। तथा–**बुद्धाणं।** पदार्थस्वरूपपरिज्ञानवतां, न पूनर्जडरूपाणाम्। तथा–**कम्मचक्कमुक्काणं।** कर्मणां ज्ञानावरणादीनां चक्रं मूलोत्तरप्रकृतिभेदप्रपञ्चः। तेन मुक्तानां रहितानाम्। तथा–**णीरयाणं।** रजो ज्ञानदृगावरणे पापं वा। ततो निष्क्रान्तानाम्।तथा–**णिम्मलाणं।** मलः सम्यग्दर्शनाद्यतिचारः भावकर्म वा। ततो निष्क्रान्तानाम्।.....

एदेहं मंगलं करेमि भावदो विसुद्धो सिरसा। एतान्कर्मतापन्नानहं भावतो विशुद्धः शिरसोत्तमांगेन मंगलं करोमि स्तुति-गोचरतां नयामि, **''आदौ मध्येऽवसाने च मंगलं भाषितं बुधैः। तज्जिनेन्द्रगुणस्तोत्र-मित्यभिधानात्।** किं कृत्वा तान्मंगलं करोमि ? **सिरसा अहिवंदिऊण सिद्धे।** शिरसाऽभिवंद्य सिद्धान्। किं कृत्वा ? **काऊण अंजलिं मत्थयम्हि।** मस्तके अंजलिं करमुकुलं कृत्वा। अहं किं विशिष्टः? **तिविहं तियरणसुद्धो।** देववंदनाप्रतिक्रमणस्वाध्यायलक्षणत्रिविधक्रियानुष्ठाने त्रीणि करणानि मनोवाक्कायलक्षणानि शुद्धानि यस्य।

श्री गौतमस्वामी सिद्धों की निषीधिका का वर्णन करते हैं—

सिद्ध भगवान कैसे हैं ?

ईषत्प्राग्भार नाम से जो आठवीं पृथ्वी है, वही मोक्षशिला है, उसका तल अर्थात जो उपरिम भाग है जो उसको प्राप्त कर चुके हैं–वहाँ पर स्थित हैं–विराजमान है ऐसे वे सिद्ध भगवान हैं। तथा वे **बुद्ध** हैं—संपूर्ण पदार्थों के स्वरूप को जानने वाले हैं न कि जड़रूप हैं। तथा **कर्मचक्र से मुक्त हैं**—ज्ञानावरण आदि जो कर्म हैं उनके मूल व उत्तर प्रकृतियों के नाना भेदरूप विस्तार को चक्र कहते हैं अर्थात् असंख्यात भेद-प्रभेदरूप कर्मों से रहित हो चुके हैं। तथा–**नीरज हैं**–रज अर्थात् ज्ञानावरण-दर्शनावरण अथवा पापकर्म प्रकृतियाँ, इनसे रहित हैं। **निर्मल हैं**–मल अर्थात् सम्यग्दर्शन आदि के अतिचार दोषादि अथवा राग, द्वेष, मोह आदि भावकर्म इनसे निकल चुके हैं—इन भावकर्म मलों से रहित हो चुके हैं।

ऐसे सिद्ध भगवंतों की मैं भाव से विशुद्ध होकर सिर झुकाकर पृथ्वी पर मस्तक टेककर मंगल करता हूँ—स्तुति करता हूँ—नमस्कार करता हूँ। मंगल का अर्थ स्तुति करना ऐसा कहा भी है—

"किसी भी ग्रंथ रचना या किसी भी कार्य की आदि में, मध्य में और अंत में मंगल करना चाहिये ऐसा विद्वानों ने कहा है।"

"तज्जिनेन्द्रगुणस्तोत्रं"–वह मंगल जिनेन्द्र भगवंतों के गुणों का स्तवन करना ही है।

इस कथन के अनुसार यहाँ श्री गौतम स्वामी ने **"एदेहं मंगलं करेमि"** इस मंगल शब्द से यहाँ इन सिद्ध भगवंतों को नमस्कार किया है।

किस प्रकार से नमस्कार किया है ?

सिर झुकाकर, मुकुलित हाथ जोड़कर, मस्तक पर अंजलि रखकर अर्थात् जुड़े हुये हाथों की अंजलि बनाकर, अंजलि पर मस्तक को रखकर नमस्कार किया है।

पुनश्च मैं कैसे नमस्कार करता हूँ ?

देववंदना, प्रतिक्रमण और स्वाध्याय इन तीन प्रकार की क्रियाओं के अनुष्ठान में मन, वचन, काय लक्षण तीन करणों की शुद्धिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

सिद्धशिला एवं सिद्ध भगवान

(विस्तृत विवेचन-त्रिलोकसार ग्रंथ से)

इदानीमष्टमभूमिस्वरूपमाह—

तिहुवणमुड्ढारूढा ईसिपभारा धरट्ठमी रुंदा।
दिग्घा इगिसगरज्जू अडजोयणपमिदबाहल्ला[1]।।556।।

त्रिभुवनमूर्धारूढ़ा ईषत् प्राग्भारा धराष्टमी रुन्द्रा।
दीर्घा एकसप्तरज्जू अष्टयोजनप्रमितबाहल्या।।556।।

तिहुवण। त्रिभुवनमूर्धारूढा ईषत् प्राग्भारसंज्ञा अष्टमी धरा तस्या रुन्द्रं दैर्ध्यं च एकसप्तरज्जू भवतः। तस्यां बाहल्यमष्टयोजनप्रमितम्।।556।।

अब अष्टम भूमि का स्वरूप कहते हैं–

गाथार्थ—तीन लोक के मस्तक पर आरूढ़ ईषत्प्राग्भार नाम वाली आठवीं पृथ्वी है, इसकी चौड़ाई और लम्बाई क्रम से एक एवं सात राजू तथा बाहुल्य आठ योजन प्रमाण है।।556।।

विशेषार्थ—सर्वार्थसिद्धि इन्द्रक विमान के ध्वजादण्ड से बारह योजन ऊपर जाकर अर्थात् तीन लोक के मस्तक पर आरूढ़ ईषत्प्राग्भार संज्ञा वाली अष्टम पृथ्वी है। इसकी चौड़ाई एक राजू, लम्बाई (उत्तर-दक्षिण) सात राजू एवं मोटाई आठ योजन प्रमाण है।

अथ तन्मध्यस्थसिद्धक्षेत्रस्वरूपं गाथा द्वयेनाह–

तम्मज्झे रूप्पमयं छत्तायारं मणुस्समहिवासं।
सिद्धक्खेत्तं मज्झडवेहं कमहीण बेहुलियं।।557।।

उत्ताणट्ठियमंते पत्तं व तणु तदुवरि तणुवादे।
अट्ठगुणड्ढा सिद्धा चिट्ठंति अणंतसुहतित्ता।।558।।

तन्मध्ये रूप्यमयं छत्राकारं मनुष्यमहीव्यासं।
सिद्धक्षेत्रं मध्येष्टवेधं क्रमहीनं बाहुल्यम्।।557।।

उत्तानस्थितमन्ते पात्रमिव तनु तदुपरि तनुवाते।
अष्टगुणाढ्याः सिद्धाः तिष्ठन्ति अनन्तसुखतृप्ताः।।558।।

1. त्रिलोकसार पृ.474-475।

तम्मज्झे। तन्मध्ये रूप्यमयं छत्राकारं मनुष्यक्षेत्रव्यासं सिद्धक्षेत्रमस्ति। तद्बाहल्यं मध्ये अष्टयोजनवेधं अन्यत्र सर्वत्र क्रमहीनं ज्ञातव्यम्।।557।।

उत्ताण। अन्ते तनुरूपमुत्तानस्थितपात्रमिव चषकमिवेत्यर्थः तस्य सिद्धि-क्षेत्रस्योपरिमतनुवाते अष्टगुणाढ्या अनन्तसुखतृप्ताः सिद्धाः तिष्ठन्ति।।558।।

अष्टम पृथ्वी के मध्य में स्थित सिद्धक्षेत्र का स्वरूप दो गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ—इस आठवीं पृथ्वी के ठीक मध्य में रजतमय छत्राकार और मनुष्य क्षेत्र के व्यास प्रमाण सिद्धक्षेत्र है। जिसकी मध्य की मोटाई आठ योजन है और अन्यत्र क्रम-क्रम से हीन होती हुई अन्त में ऊँचे (सीधे) रखे हुए कटोरे के सदृश थोड़ी (मोटाई) रह गई है। इस सिद्ध क्षेत्र के ऊपरवर्ती तनुवातवलय में सम्यक्त्वादि आठ गुणों से युक्त और अनन्त सुख से तृप्त सिद्ध परमेष्ठी स्थित हैं।557-558।।

विशेषार्थ—जिस प्रकार पृथ्वी पर शिला होती है, उसी प्रकार आठवीं पृथ्वी के ठीक मध्य भाग में चाँदी सदृश (श्वेत) वर्ण वाली छत्राकार शिला है। इसी को सिद्ध क्षेत्र कहते हैं। इस सिद्धक्षेत्र का व्यास मनुष्य क्षेत्र सदृश अर्थात् 4500000 योजन (18000000000) मील प्रमाण है। उसका बाहुल्य मध्य में अष्ट योजन (32000 मील) है, अन्यत्र सर्वत्र क्रम-क्रम से हीन होता हुआ अन्त में बिल्कुल कम (एक प्रदेश प्रमाण) रह गया है। यह सीधे रखे हुए कटोरे या धवल छत्र के आकार वाला है। इस सिद्धक्षेत्र के उपरिम तनुवातवलय में सम्यक्त्वादि आठ गुणों से युक्त एवं अनन्त सुख से तृप्त सिद्ध भगवान स्थित हैं। वह सिद्ध लोक है।

अथ अनन्तसुखतृप्तत्वे दृष्टान्तान्तरं गाथाद्वयेनाह–

एयं सत्थं सत्थं वा सम्ममेत्थ जाणंता।
तिव्वं तुस्संति णरा किण्ण समत्थत्थतच्चण्हा।।559।।

एकं शास्त्रं सर्वं शास्त्रं वा सम्यगत्र जानन्तः।
तीव्रं तुष्यन्ति नराः किं न समस्तार्थतत्त्वज्ञाः।।559।।

एयं। एकं शास्त्रं सर्वं शास्त्रं वा सम्यगत्र जानन्तो नरास्तीव्रं तुष्यन्ति समस्तार्थतत्त्वज्ञास्तु सिद्धाः किं न तुष्यन्ति ? अपि तु तुष्यन्त्येव।।559।।

अब दो गाथाओं द्वारा अनन्त सुख की तृप्तता के दृष्टान्त कहते हैं—

गाथार्थ—जब एक शास्त्र या सर्व शास्त्रों को भली प्रकार जान लेने वाले मनुष्य तीव्र संतोष को प्राप्त होते हैं, तब समस्त अर्थ एवं तत्त्वों को जानने वाले सिद्ध प्रभु क्या तृप्ति को प्राप्त नहीं होंगे ? अपितु होंगे ही होंगे।।559।।

विशेषार्थ—जबकि एक या सर्व शास्त्रों को (सम्यक्) भली प्रकार से जान लेने वाले मनुष्य अत्यन्त संतोष को प्राप्त होते हैं, तब साक्षात् समस्त अर्थ एवं तत्त्वों को एक साथ और निरन्तर जानने वाले परमेष्ठी क्या संतोष को प्राप्त नहीं होंगे ? अवश्य ही होंगे।

सिद्धों की अवगाहना का वर्णन

अथ सिद्धानां जघन्योत्कृष्टेनावगाहक्षेत्रमाह—

णवपण्णारसलक्खा सयाणं खंडाणमेयखंडम्हि।
सिद्धाणं तणुवादे जहण्णमुक्कस्सयं ठाणं[1]।।141।।

नवपञ्चदशलक्ष शतानां खण्डानामेकखण्डे।
सिद्धानां तनुवाते जघन्यमुत्कृष्टं स्थानम्।।141।।

लोक के अग्रभाग पर तनुवातवलय में विराजमान सिद्ध परमेष्ठी की जघन्योत्कृष्ट अवगाहना द्वारा रुद्ध क्षेत्र कहते हैं—

गाथार्थ—तनुवातवलय के बाहुल्य के नव लाख खण्ड करने पर एक खण्ड में जघन्य अवगाहना वाले सिद्ध परमेष्ठी हैं और उसी बाहुल्य के पन्द्रह सौ खण्ड करने पर उसके एक खण्ड में उत्कृष्ट अवगाहना वाले सिद्ध परमेष्ठी विराजमान हैं।।141।।

अथ तदवगाहं व्यवहारं कुर्वन्नाह–

पणसयगुणतणुवादं इच्छियउग्गाहणेण पविभत्तं।
हारो तणुवादस्स य सिद्धाणोगाहणाणयणे।।142।।

पञ्चशतगुणतणुवातः इच्छितावगाहनेन प्रविभक्तः।
हारस्तनुवातस्य च सिद्धानामवगाहनानयने।।142।।

1. त्रिलोकसार पृ. 152-153।

पण। पञ्चशत 500 गुणित 787500 तनुवातः 1575 ईप्सितावगाहनेन प्रविभक्तः 7/8 हारस्तनुवातस्य च सिद्धानामवगाहनानयने। एतावत्खण्डानां 90000 एतावत्सु 787500 व्यवहारदण्डेषु एकखण्डस्य कियन्तो दण्डा इति सम्पात्य एतावता 112500 अपवर्तने 7/8 जघन्यावगाहः एवमुत्कृष्टावगाहो ज्ञातव्यः। उभयत्र चतुर्धापवर्तनविधिश्च ज्ञातव्यः।।142।।

उस अवगाहना को व्यवहाररूप करने के लिए कहते हैं—

विशेषार्थ—तनुवातवलय का बाहुल्य तो प्रमाणाङ्गुल की अपेक्षा है और सिद्धों की अवगाहना व्यवहाराङ्गुल की अपेक्षा है, अतः तनुवातवलय के बाहुल्य (मोटाई) 1575 धनुष को 500 से गुणित करने पर (1575 × 500) सात लाख, सत्तासी हजार, पाँच सौ (7,87,500) व्यवहार धनुषों का प्रमाण प्राप्त हो जाता है। इसमें जघन्य अवगाहना 7/8 धनुष का भाग देने पर (787500 ÷ 7/8) अर्थात् (787500/1 × 8/7), 900000 खण्ड प्राप्त होते हैं। जबकि 900000 खण्डों में 787500 व्यवहार धनुष होते हैं, तब 1 खण्ड में कितने धनुष प्राप्त होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक कर 787500/900000 को 112500 से अपवर्तित करने पर 7/8 व्यवहार धनुष प्रमाण सिद्धों की जघन्य अवगाहना प्राप्त होती है।

सिद्धों की जघन्य अवगाहना 3-1/2 हाथ की होती है तथा 4 हाथ का एक धनुष होता है, अतः जबकि 4 हाथ का 1 धनुष होता है, तब 3-1/2 हाथ के कितने धनुष होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर (1/4 × 7/2) = 7/8 धनुष प्राप्त होंगे, जबकि 787500 धनुष में 900000 खण्ड प्राप्त होते हैं, तब 7/8 धनुष के कितने खण्ड प्राप्त होंगे ? इस प्रकार पुनः त्रैराशिक कर (900000/787500 × 7/8) अपवर्तित करने पर 1 खण्ड प्राप्त होता है, अतः जघन्य अवगाहना वाले सिद्ध परमेष्ठी तनुवातवलय के 1/900000 भाग में विराजमान हैं, यह बात सिद्ध हुई।

उत्कृष्ट अवगाहना—सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना 525 धनुष की होती है तथा तनुवातवलय की मोटाई 1575 धनुष है, जिसके 78500 व्यवहार धनुष होते हैं, जबकि 525 धनुष का 1 खण्ड होता है, तब 787500 धनुष के कितने खण्ड होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर (78700/525=1500)

खण्ड प्राप्त हुए, जबकि 787500 धनुष के 1500 खण्ड होते हैं, तब 525 धनुष के कितने खण्ड होंगे ? इस प्रकार पुनः त्रैराशिक करने पर (1500 × 525/787500) = 1 खण्ड प्राप्त हुआ, अतः सिद्ध हुआ कि उत्कृष्ट अवगाहना वाले सिद्ध परमेष्ठी तनुवातवलय के 1/1500 भाग में रहते हैं।

सिद्धप्रभु स्तोत्र

–स्रग्विणी छंद–

हे प्रभो! आप सौ इन्द्र से वंद्य हैं।
तीन ही लोक के ईश अभिनंद्य हैं।।
पूरिये नाथ! मेरी मनोकामना।
फेर होवे न संसार में आवना।।1।।

चार गति में भ्रमा सौख्य का लेश ना।
जन्म औ मृत्यु ये दुःख देवें घना।।पूरिये.।।2।।

मैं सुना शास्त्र में आप ही हो सुखी।
सिद्धसुख की नहीं कोइ उपमा कभी।।पूरिये.।।3।।

चक्रि के भोगभूमिज व धरणेन्द्र के।
इन्द्र अहमिंद्र के सुख अनंतें गुणें।।पूरिये.।।4।।

इन सभी के त्रिकालीक सुख लीजिये।
इन सुखों को अनंतें गुणा कीजिये।।पूरिये.।।5।।

सिद्ध सुख एक क्षण का भि उत्कृष्ट है।
तोल सकते न इसको परम श्रेष्ठ है।।पूरिये.।।6।।

सिद्ध सुख की नहीं कल्पना हो सके।
जीव छद्मस्थ इस स्वाद ना ले सकें।।पूरिये.।।7।।

आज मैं आपकी संस्तुति कर रहा।
सिद्धसुख चाह से वंदना कर रहा।।पूरिये.।।8।।

मैं नमूँ मैं नमूँ कोटि कोटी नमूँ।
सर्व मिथ्यात्व क्रोधादिविष को वमूँ।।पूरिये.।9।।

तीन ही रत्न के हेतु फिर फिर नमूँ।
''ज्ञानमती'' पूर्ण हो नाथ! ये ही चहूँ।।पूरिये.।।10।।

सिद्ध लोक और सिद्ध शिला

–गणिनी ज्ञानमती

सर्वार्थसिद्धि नामक इंद्रक के ध्वज से 12 योजन मात्र ऊपर जाकर 'ईषत्प्राग्भार' नाम की आठवीं पृथ्वी स्थित है। तीन भुवन के मस्तक पर स्थित इस पृथ्वी की पूर्व-पश्चिम चौड़ाई 1 राजु है, उत्तर-दक्षिण लम्बाई 7 राजु है एवं मोटाई आठ योजन मात्र है। अतः यह पृथ्वी लोक के अंत तक आठ योजन मोटी है। इस पृथ्वी के ऊपर तीन वातवलय हैं जो कुछ कम एक योजन मात्र हैं। घनोदधिवातवलय 2 कोस, घनवातवलय 1 कोस, तनुवातवलय 425 धनुष कम 1 कोस है। एक कोश 2000 धनुष का है।

इस आठवीं पृथ्वी के मध्य में रजतमयी, अर्धचन्द्र के आकार वाला मनुष्य क्षेत्र समान, गोल, पैंतालीस लाख योजन विस्तृत 'सिद्ध क्षेत्र' है। इस क्षेत्र के मध्य की मोटाई आठ योजन है एवं क्रम से घटते-घटते अंत में 1 अंगुल मात्र है। अर्थात् यह सिद्धशिला उपरिम भाग में तो समानरूप है और नीचे हानि, वृद्धिरूप है। त्रिलोकसार में इस सिद्धशिला को उत्तान चषक मिव[1] – सीधे रखे हुए कटोरे सदृश कहा है। यह शिला 4500000 योजन विस्तृत है और इसकी परिधि 14,23,0249 योजन प्रमाण है।

सभी सिद्ध भगवान सिद्ध क्षेत्र के उपरिम भाग—तनुवात के चतुर्थ भाग में विराजमान हैं, अंतिम शरीर के प्रमाण से किंचित् न्यून आत्मप्रदेश वाले हैं।

तनुवातवलय 425 धनुष कम एक कोश का है। एक कोश में 2000 धनुष होते हैं। अतः तनुवातवलय में – 2000 – 425=1575 धनुष। तनुवातवलय के कोस प्रमाणांगुल की अपेक्षा से है और सिद्धों की अवगाहना व्यवहारांगुल की अपेक्षा से है। इसलिये 1575 को 500 से गुणा करके व्यवहार धनुष बना लीजिये—1575×500=787500 धनुष।तनुवात की मोटाई को पाँच सौ से गुणा करके 1500 का भाग देने पर सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण होता है। जैसे—1575×500÷1500=525 धनुष एवं 900000 का भाग देने पर जघन्य अवगाहना होती है। 1575×500 ÷900000=7/8 धनुष=3/1/2 हाथ। इसमें सिद्धों की जघन्य अवगाहना सात धनुष के आठवें भाग है। धनुष के 4 हाथ

होते हैं अतः 7×4=28; 28÷8=3-1/2 हाथ। सिद्धों की जघन्य अवगाहना 3-1/2 हाथ है एवं उत्कृष्ट अवगाहना 525 धनुष है[1]।

अथवा सरलता से समझने के लिए दूसरी विधि यह है–

घनोदधिवातवलय	4000 धनुष
घनवातवलय	2000 धनुष
तनुवातवलय	1575 धनुष।

ये महाधनुष का प्रमाण है। इन सभी को 500 से गुणा करके लघु धनुष बनाइये—4000+2000+1575=7575 को 500 से गुणा करने पर—7575×5=3787500 लघु धनुष हुए।

इनमें सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना 525 को घटाइये। तब 3787500-525=37,86,975 हुआ।

उत्कृष्ट 525 धनुष की अवगाहना वाले सिद्ध भगवान– सिद्धशिला से सैंतीस लाख, छ्यासी हजार नव सौ पचहत्तर लघु धनुष ऊपर जाकर उत्कृष्ट अवगाहना वाले सिद्ध भगवान विराजमान हैं, जैसे कि इस युग के प्रारंभ में उत्कृष्ट अवगाहना वाले श्री बाहुबली भगवान हैं।

लघु साढ़े 3 हाथ की अवगाहना वाले सिद्ध भगवान– एक धनुष में चार हाथ होते हैं। अतः 3787499 लघु धनुष व अर्द्ध हाथ ऊपर जाकर साढ़े तीन हाथ की अवगाहना वाले सिद्ध भगवान विराजमान हैं।

मध्यम अवगाहना वाले सिद्ध भगवान– साढ़े तीन हाथ से ऊपर व 525 धनुष से नीचे की सभी अवगाहना वाले सिद्ध मध्यम अवगाहना वाले हैं। जैसे कि भगवान महावीर स्वामी 7 हाथ की अवगाहना वाले हैं अतः वे सिद्धशिला से 3787498 धनुष एक हाथ ऊपर जाकर सात हाथ की अवगाहना से विराजमान हैं।

सभी सिद्ध भगवन्तों के मस्तक तनुवातवलय के अंत से स्पर्शित हैं।

भगवान ऋषभदेव, वासुपूज्य और नेमिनाथ ये तीन तीर्थंकर पद्मासन से मोक्ष गये हैं और शेष इक्कीस तीर्थंकर खड्गासन से मोक्ष गये हैं।[2]

वे सिद्ध जीव जहाँ तक धर्मास्तिकाय है वहीं तक जाकर स्थित हो गये हैं आगे नहीं जाते हैं। एक जीव से अवगाहित क्षेत्र के भीतर जघन्य, उत्कृष्ट

और मध्यम अवगाहना से सहित अनंत सिद्ध होते हैं। मनुष्य लोक प्रमाण स्थित तनुवात के उपरिम भाग में सब सिद्धों के मस्तक सदृश होते हैं अधस्तन भाग में कोई विसदृश होते हैं। जितना मार्ग मध्यलोक के ऊपर जाने योग्य है उतना जाकर लोक शिखर पर सब सिद्ध पृथक् पृथक् मोम से रहित मूषक के अभ्यंतर आकाश के सदृश हो जाते हैं। ये सिद्ध भगवान आठ कर्मों से छूटकर सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान आदि अनंतगुणों के सागर स्वरूप, अरूपी, अशरीरी, नित्य, निरंजन, कृतकृत्य होकर एक ही समय में युगपत् तीनलोक, तीनकालवर्ती समस्त पदार्थों को जान लेते हैं और अनंत सुख सागर में सदा के लिये निमग्न हो जाते हैं। असंख्यों कल्प कालों के बीत जाने पर भी वे वापस संसार में नहीं आते हैं। संसार के संपूर्ण दुःखों से छूटकर आत्मीक अनंत शिव सौख्य का अनुभव करते हैं।

सिद्धों का सुख

लोक में एक शास्त्र या संपूर्ण शास्त्र को अच्छी तरह से जान लेने पर मनुष्य को बहुत ही संतोष सुख–आनंद उत्पन्न होता है। पुनः सम्पूर्ण लोकालोक को जानने वालों को कितना सुख होगा इसका अनुमान करना भी अशक्य है। जिन्हें वह ज्ञान और सुख प्राप्त हुआ है वे ही उस आनंद का अनुभव कर सकते हैं। अन्य जन नहीं कर सकते। त्रिलोकसार में कहा है कि—

चक्किकुरुफणिसुरिदे सहमिन्दे जं सुहं तिकालभवं।
तत्तो अणंतगुणिदं सिद्धाणं खणसुहं होदि।।560।।

अर्थ—चक्रवर्ती के सुख से भोगभूमियों का सुख अनंतगुणा है, भोग-भूमियों से धरणेन्द्र का सुख अनंतगुणा है, उससे देवेन्द्र का सुख अनंतगुणा है, उससे अहमिन्द्रों का सुख अनंतगुणा है। इन सभी के अनंतानंत गुणित अतीत, अनागत और वर्तमान काल संबंधी सम्पूर्ण सुखों को एकत्रित करिये उसकी अपेक्षा भी अनंतगुणा अधिक सुख सिद्धों को एक क्षण मात्र में उत्पन्न होता है यह तो केवल उदाहरण मात्र है, संसारी सभी जीवों का सुख

1. त्रिलोकसार गाथा 141-142 (त्रिलोकसार गाथा 558 की टीका का अंश।
2. हरिवंशपुराण पृ. 726।

आकुलता सहित है और सिद्धों का सुख निराकुल है इसलिये सिद्धों का सुख वचन के अगोचर है।

संसार में कोई-कोई भव्य जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्ररूप रत्नत्रय के बल से कर्मों का नाश करके स्वयं ही अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं। उसी का नाम सिद्धावस्था है **''सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः''** के अनुसार अपने आत्मा के स्वरूप को प्राप्त कर लेना ही सिद्धि है ऐसे सिद्ध परमेष्ठी अनंतानंत प्रमाण है। वर्तमान में भी विदेह आदि से कितने ही भव्य जो रत्नत्रयरूप पुरुषार्थ के बल से अपने अनंत गुणों को और शाश्वत सौख्य, पूर्ण ज्ञान को प्रकट करेंगे। उन अतीतानागत वर्तमानकालीन सम्पूर्ण सिद्धों को सिद्धभक्तिपूर्वक मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार होवे।

सिद्धांस्त्रैलोक्यमूर्धस्थान्, अकृतानि कृतानि च।
जिनचैत्यानि लोकेऽस्मिन् वंदे सर्वाणि सिद्धये।।

सिद्धलोक प्रज्ञप्ति

(श्री यतिवृषभाचार्य विरचित-तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ से)

णवमो महाधियारो

सिद्धों के निवास स्थान, अवगाहना, सुख एवं भावना का सुंदर वर्णन—

निवास क्षेत्र का वर्णन

उम्मग्गसंठियाणं भव्वाणं मोक्खमग्गदेसयरं।
पणमिय संतिजिणेसं वोच्छामो सिद्धलोयपण्णत्तिं[1]।।1।।

सिद्धाण णिवासखिदी संखा ओगाहणाणि सोक्खाइं।
सिद्धत्तहेदुभाओ सिद्धजगे पंच अहियारा।।2।।

अट्ठमखिदीए उवरिं पण्णासब्भहियसत्तयसहस्सा।
दंडाणिं गंतूणं सिद्धाणं होदि आवासो।।3।।

पणदो छप्पण इगिअडणहचउसगचउखचदुरअडकमसो।
अट्ठहिदा जोयणया सिद्धाण णिवासखिदिमाणं।।4।।

8404740815625
8

।णिवासखेत्तं गदं।

निवास क्षेत्र का वर्णन

उन्मार्ग में स्थित भव्यों को मोक्षमार्ग का उपदेश करने वाले शान्ति जिनेन्द्र को नमस्कार करके सिद्धलोक प्रज्ञप्ति को कहते हैं।।1।।

सिद्धों की निवासभूमि, संख्या, अवगाहना, सौख्य और सिद्धत्व के हेतुभूत भाव, ये सिद्धलोक में पांच अधिकार हैं।।2।।

आठवीं पृथिवी के ऊपर सात हजार पचास धनुष जाकर सिद्धों का आवास है।।3।।

सिद्धों के निवास क्षेत्र का प्रमाण अंकक्रम से आठ से भाजित पांच, दो, छह, पांच, एक, आठ, शून्य, चार, सात, चार, शून्य, चार और आठ इतने योजन है।।4।।

8404740815625
8

निवास क्षेत्र समाप्त हुआ।

---

1. तिलोयपण्णत्ति-अधिकार-9 पृ. 872 ये 882 तक।

संख्या का वर्णन

तीदसमयाण संखं अडसमयब्भहियमासछक्कहिदा।
अडहीणछस्सयाहदपरिमाणजुदा हुवंति ते सिद्धा।।5।।

अ । 592
मा 6 स 8

।संखा गदा।

अवगाहना का वर्णन

पणकदिजुदपंचसया ओगाहणया धणूणि उक्कस्से।
आउट्ठहत्थमेत्ता सिद्धाण जहण्णठाणम्मि।।6।।

525 | ह 7/2 |

तणुवादबहलसंखं पणसयरूवेहि ताडिदूण तदो।
पण्णरसदेहि भजिदे उक्कस्सोगाहणं होदि।।7।।

1575 | 500 | 525 |
1500

संख्या का वर्णन

अतीत समयों की संख्या में छह मास और आठ समय का भाग देकर आठ कम छह सौ अर्थात् पांच सौ बानवै से गुणा करने पर जो प्राप्त हो उतने सिद्ध हैं।।5।।

अतीत समय ÷ 6 मास, 8 स. × 592 = सब सिद्ध।

संख्या का कथन समाप्त हुआ।

अवगाहना का वर्णन

इन सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना पांच के वर्ग से युक्त पांच सौ अर्थात् पांच सौ पच्चीस धनुष और जघन्य अवगाहना साढ़े तीन हाथ प्रमाण है।।6।।

उत्कृष्ट 525 ध., जघन्य 7/2 हाथ

तनुवात के बाहल्य की संख्या को पांच सौ रूपों से गुणा करके पन्द्रह सौ का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण होता है।।7।। पाठान्तर।

त. वा. 1575 × 500 ÷ 1500 = 525 धनुष।

तणुवाद बहलसंखं पणसयरूवेहि ताडिदूण तदो।
णवलक्खेहिं भजिदे जहण्णमोगाहणं होदि।।8।।

1575 । 500 7
900000 2

लोयविणिच्छयगंथे लोयविभागम्मि सव्वसिद्धाणं।
ओगाहणपरिमाणं भणिदं किंचूणचरिमदेहसमो।।9।।

पाठान्तरम्।

दीहत्तं बाहल्लं चरिमभवे जस्स जारिसं ठाणं।
तत्तो तिभागहीणं ओगाहण सव्वसिद्धाणं।।10।।
पण्णसुत्तरतिसया उक्कस्सोगाहणं हवे दंडं।
तियभजिदसत्तहत्था जहण्णओगाहणं ताणं।।11।।

पाठान्तरम्।

350 । ह 7/3

तणुवादपवणबहले दोहिं गुणिणयेण भजिदम्मि।
जं लद्धं सिद्धाणं उक्कसोगाहणं ठाणं।।12।।

2250 / 1575 / 500/1 / एदेण तेरासिलद्धं 2 / 1575 / 350।

तनुवात के बाहल्य की संख्या को पांच सौ रूपों से गुणा करके नौ लाख का भाग देने पर जघन्य अवगाहना का प्रमाण होता है।।8।।

1575 × 500 ÷ 900000= 7/8 धनुष = 3-1/2 हाथ।

लोकविनिश्चय ग्रंथ में लोकविभाग में सब सिद्धों की अवगाहना का प्रमाण कुछ कम चरम शरीर के समान कहा है।।9।। पाठान्तर।

अन्तिम भव में जिसका जैसा आकार,दीर्घता और बाहल्य हो, उससे तृतीय भाग से कम सब सिद्धों की अवगाहना होती है।।10।।

सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना तीन सौ पचास धनुष और जघन्य अवगाहना तीन से भाजित सात हाथ प्रमाण है।।11।।

पाठान्तर।

उ.350 ध.। ज. 7/3 हा.।

तनुवात पवन के बाहल्य को दो से गुणित कर नौ का भाग देने पर जो लब्ध आवे, उतना सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना का स्थान होता है।।12।।

1575 × 2 ÷ 9 = 350 धनुष।

तणुवादस्स य बहले छस्सयपण्णत्तरीहि भजिदम्मि।
जं लद्धं सिद्धाणं जहण्णओगाहणं होदि।।13।।

13500000 । 1575 । 2000 । 1। तेरासिएण सिद्धं 1575 | 7 |
675 | 3 |

पाठान्तरम्।

अवरुक्कस्संमज्झिमओगाहरणसहिदसिद्धजीवाओ।
होंति अणंता एक्केणोगाहिद खेत्तमज्झम्मि।।14।।
माणुसलोयपमाणे संठियतणुवादउवरिमे भागे।
सरिस सिरा सव्वाणं हेट्ठिमभागम्मि विसरिसा केई।।15।।
जावद्धं गंदव्वं तावं गंतूण लोयसिहरम्मि।
चेट्ठंति सव्वसिद्धा पुह पुह गयसित्थमूसगब्भणिहा।।16।।

ओगाहणा गदा।

सुख का वर्णन

णिरुवमरूवा णिट्ठियकज्जा णिच्चा णिरंजणा णिरुजा।
णिम्मलबोधा सिद्धा णिरुवं जाणंति हु एक्कसमएणं।।17।।

।सोक्खं सम्मत्तं।

तनुवात के बाहल्य में छह सौ पचहत्तर का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतनी सिद्धों की जघन्य अवगाहना होती है।।13।।

1575 ÷ 675 = 7/3 = 2- 1/3 ध.।

एक जीव से अवगाहित क्षेत्र के भीतर जघन्य,उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना से सहित अनन्त सिद्ध जीव होते हैं।।14।।

मनुष्य लोक प्रमाण स्थित तनुवात के उपरिम भाग में सब सिद्धों के सिर सदृश होते हैं। अधस्तन भाग में कोई विसदृश होते हैं।।15।।

जितना मार्ग जाने योग्य है उतना जाकर लोकशिखर पर सब सिद्ध पृथक्-पृथक् मोम से रहित मूषक के अभ्यन्तर आकाश के सदृश स्थित हो जाते हैं।।16।।

अवगाहना का कथन समाप्त हुआ।

सुख का वर्णन

अनुपम स्वरूप से संयुक्त, कृतकृत्य, नित्य, निरंजन, नीरोग और निर्मल बोध से युक्त सिद्ध एक ही समय में समस्त पदार्थों को सदैव जानते हैं।।17।।

सौख्य का कथन समाप्त हुआ।

भावना का वर्णन

जह चिरसंचिदमिंधणमणलो पवणाहदो लहुं डहदि।
तह कम्मिंधणमहियं खणेण झाणाणलो दहइ।।18।।
जो खविदमोहकलुसो विसयविरत्तो मणो णिरुंभित्ता।
समवट्ठिदो सहावे सो पावइ णिव्वुदीसोक्खं।।19।।
जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व जोगपरिकम्मो।
तस्स सुहासुहदहणो झाणमओ जायदे अगणी।।20।।
दंसणणाणसमग्गं झाणं णो अण्णदव्वसंसत्तं।
जायदि णिज्जरहेदू सभावसहिदस्स साहुस्स।।21।।
जो सव्वसंगमुक्को णण्णमणो अप्पणो सहावेणे।
जाणदि पस्सदि आदं सो सगचरियं चरदि जीओ।।22।।
णाणम्मि भावणा खलु कादव्वा दंसणे चरित्ते य ।
ते पुण आदा तिण्णि वि तम्हा कुण भावणं आदे।।23।।

भावना का वर्णन

जिस प्रकार चिरसंचित ईंधन को पवन से आहत अग्नि शीघ्र ही जला देती है, उसी प्रकार ध्यानरूपी अग्नि अधिक कर्मरूपी ईंधन को क्षणमात्र में जला देती है।।18।।

जो दर्शनमोह और चारित्रमोह को नष्टकर विषयों से विरक्त होता हुआ मन को रोककर आत्मस्वभाव में स्थित होता है, वह मोक्ष सुख को प्राप्त करता है।।19।।

जिसके राग, द्वेष, मोह ओर योगपरिकर्म (योगपरिणति) नहीं हैं उसके शुभाशुभ (पुण्य-पाप) को जलाने वाली ध्यानमय अग्नि उत्पन्न होती है।।20।।

शुद्ध स्वभाव से सहित साधु का दर्शन-ज्ञान से परिपूर्ण ध्यान निर्जरा का कारण होता है, अन्य द्रव्यों से संसक्त वह निर्जरा का कारण नहीं होता है।।21।।

जो अन्तरङ्ग, बहिरङ्ग सर्व संग से रहित और अनन्यमन अर्थात् एकाग्रचित्त होता हुआ अपने चैतन्य स्वभाव से आत्मा को जानता व देखता है वह जीव आत्मीय चारित्र का आचरण करता है।।22।।

ज्ञान, दर्शन और चारित्र में भावना करना चाहिये। चूंकि वे तीनों (दर्शन, ज्ञान और चारित्र) आत्मस्वरूप हैं इसीलिए आत्मा में भावना को करो।।23।।

अहमेक्को खलु सुद्धो दंसणणाणप्पगो सदारूवी।
ण वि अत्थि मज्झि किंचि वि अण्णं परमाणुमेत्तं पि।।24।।
णत्थि मम कोइ मोहो बुज्झो उवजोगमेवमहमेगो।
इह भावणाहि जुत्तो खवेइ दुट्ठट्ठकम्माणिं।।25।।
णाहं होमि परेसिं ण मे परे संति णाणमहमेक्को।
इदि जो झायदि झाणे सो मुच्चइ अट्ठकम्मेहिं।।26।।
चित्तविरामे विरमंति इंदिया तेसु विरदेसुं।
आदसहावम्मि रदी होदि पुढं तस्स णिव्वाणं।।27।।
णाहं देहो ण मणो ण चेव वाणी ण कारणं तेसिं।
एवं खलु जो भाओ सो पावइ सासयं ठाणं।।28।।
देहो व मणो वाणी पोग्गलदव्वप्पगो त्ति णिद्दिट्ठं।
पोग्गलदव्वं पि पुणो पिंडो परमाणुदव्वाणं।।29।।

मैं निश्चय से सदा एक, शुद्ध, दर्शन-ज्ञानात्मक और अरूपी हूँ। मेरा परमाणु मात्र भी अन्य कुछ नहीं है।।24।।

मोह मेरा कोई नहीं है, एक ज्ञान-दर्शनोपयोगरूप ही मैं जानने योग्य हूँ; ऐसी भावना से युक्त जीव दुष्ट आठ कर्मों को नष्ट करता है।।25।।

न मैं पर पदार्थो का हूँ और न पर पदार्थ मेरे है, मैं तो ज्ञानस्वरूप अकेला ही हूँ; इस प्रकार जो ध्यान में चिंतन करता है वह आठ कर्मों से मुक्त होता है।।26।।

चित्त के शान्त होने पर इन्द्रियां शान्त होती हैं और उन इन्द्रियों के शान्त होने पर आत्मस्वभाव में रति होती है। पुनः इससे उसे स्पष्टतया निर्वाण प्राप्त होता है।।27।।

न मैं देह हूँ, न मन हँ, न वाणी हूँ और न उनका कारण ही हूँ। इस प्रकार जो भाव है वह शाश्वत स्थान को प्राप्त करता है।।28।।

देह के समान मन और वाणी पुद्गल द्रव्यात्मक पर हैं, ऐसा कहा गया है। पुद्गल द्रव्य भी परमाणु द्रव्यों का पिण्ड है।।29।।

णाहं पोग्गलमइओ ण दे मया पुग्गला कुदा पिंडं।
तम्हा हि ण देहो हं कत्ता वा तस्स देहस्स।।30।।
एवं णाणप्पाणं दंसणभूदं अदिंदियमहत्थं।
धुवममलमणालंबं भावेमं अप्पयं सुद्धं।।31।।
णाहं होमि परेसिं ण मे परे संति णाणमहमेक्को।
इदि जो झायदि झाणे सो अप्पाणं हवदि झादा।।32।।
जो एवं जाणित्ता झादि परं अप्पयं विसुद्धप्पा।
अणुवममपारविसयं सोक्खं पावेदि सो जीओ।।33।।
णाहं होमि परेसिं ण मे परे णत्थि मज्झमिह किं पि।
एवं खलु जो भावइ सो पावइ सव्वकल्लाणं।।34।।
उड्ढोधमज्झलोए ण मे परे णत्थि मज्झमिह किंचि।
इह भावणाहि जुत्तो सो पावइ अक्खयं सोक्खं।।35।।

न मैं पुद्गलमय हूँ और न मैंने उन पुद्गलों को पिण्डरूप (स्कन्धरूप) किया है। इसीलिये न मैं देह हूँ और न उस देह का कर्ता ही हूँ।।30।।

इस प्रकार ज्ञानात्मक, दर्शनभूत, अतीन्द्रिय, महार्थ, नित्य, निर्मल और निरालम्ब शुद्ध आत्मा का चिन्तन करना चाहिये।।31।।

न मैं पर पदार्थों का हूं और न पर पदार्थ मेरे हैं, मैं तो ज्ञानमय अकेला हूँ, इस प्रकार जो ध्यान में आत्मा का चिन्तन करता है, वह ध्याता है।।32।।

जो विशुद्ध आत्मा इस प्रकार जानकर उत्कृष्ट आत्मा का ध्यान करता है वह जीव अनुपम और अपार विषयिक अर्थात् अनन्तचतुष्टयात्मक सुख को प्राप्त करता है।।33।।

न मैं पर पदार्थों का हूं और न पर पदार्थ मेरे हैं, यहाँ मेरा कुछ भी नहीं है; इस प्रकार जो भावना भाता है वह सब कल्याण को पाता है ।।34।।

यहाँ ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक में मेरे पर पदार्थ कोई नहीं हैं, यहां मेरा कुछ भी नहीं हैं। इस प्रकार की भावनाओं से युक्त वह जीव अक्षय सुख को पाता है।।35।।

मदमाणमायरहिदो लोहेण विवज्जिदो य जो जीवो।
णिम्मलसहावजुत्तो सो पावइ अक्खयं ठाणं।।36।।
परमाणुपमाणं वा मुच्छा देहादिएसु जस्स पुणो।
सो ण वि जाणदि समयं सगस्स सव्वागमधरो वि।।37।।
तम्हा णिव्वुदिकामो रागं देहेसु कुणदि मा किंचि।
देहविभिण्णो अप्पा झायव्वो इंदियादीदो।।38।।
देहत्थो देहादो किंचूणो देहवज्जिओ सुद्धो।
देहायारो अप्पा झायव्वो इंदियातीदो।।39।।
झाणे जदि णियआदा णाणादो णावभासदे जस्स।
झाणं होदि ण तं पुण जाण पमादो हु मोहमुच्छा वा।।40।।
गयसित्थ मूसगब्भायारो रयणत्तयादिगुणजुत्तो।
णियआदा झायव्वो खयरहिदो जीवघणदेसो।।41।।
जो आदभावणमिणं णिच्चुवजुत्तो मुणी समाचरदि।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावइ अचिरेण कालेणं।।42।।

जो जीव मद, मान व माया से रहित; लोभ से वर्जित और निर्मल स्वभाव से युक्त होता है वह अक्षय स्थान को पाता है।।36।।

जिसके परमाणु प्रमाण भी देहादिक में राग है वह समस्त आगम का धारी होकर भी अपने समय को नहीं जानता है।।37।।

इसलिए मोक्ष के अभिलाषी पुरुष को देह में कुछ भी राग न करके देह से भिन्न अतीन्द्रिय आत्मा का ध्यान करना चाहिये।।38।।

देह में स्थित, देह से कुछ कम, देह से रहित, शुद्ध देहाकार और इन्द्रियातीत आत्मा का ध्यान करना चाहिये।।39।।

जिस जीव के ध्यान में यदि ज्ञान से निज आत्मा का प्रतिभास नहीं होता है तो वह ध्यान नहीं है। उसे प्रमाद, मोह अथवा मूर्छा ही जानना चाहिये।।40।।

मोम से रहित मूषक के (अभ्यन्तर) आकाश के आकार, रत्नत्रयादि गुणों से युक्त, अविनश्वर और जीवघनदेशरूप निज आत्मा का ध्यान करना चाहिये।।41।।

जो साधु नित्य उद्योगशील होकर इस आत्मभावना का आचरण करता है, वह थोड़े समय में सब दुःखों से छुटकारा पा लेता है।।42।।

कम्मे णोकम्मम्मि य अहमिदि अहयं च कम्मणोकम्मं।
जायदि सा खलु बुद्धी सो हिंडह गरुवसंसारं।।43।।
जो खविदमोहकम्मो विसयविरत्तो मणो णिरुंभित्ता।
समवट्ठिदो सहावे सो मुच्चइ कम्मणिगलेहिं।।44।।
पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहि वज्जिओ अप्पा।
सो हं इदि चिंतेज्जो तत्थेव य कुणह थिरभावं।।45।।
केवलणाणसहावो केवलदंसणसाहवो सुहमइओ।
केवलविरियसहाओ सो हं इदि चिंतए णाणी।।46।।
जो सव्वंसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावइ अचिरेण कालेणं।।47।।
जो इच्छदि णिस्सरिदुं संसारमहण्णवस्स रुद्दस्स।
सो एवं जाणित्ता परिझायदि अप्पयं सुद्धं।।48।।
पडिकमणं पडिसरणं पडिहरणं धारणा णियत्ती य।
णिंदणगरुहणसोही लब्भंति णियादभावणए।।49।।

कर्म और नोकर्म में 'मैं हूं ' तथा मैं कर्म नोकर्म रूप हूं; इस प्रकार जो बुद्धि होती है उससे यह प्राणी महान् संसार में घूमता है।।43।।

जो मोहकर्म (दर्शनमोह और चारित्रमोह) को नष्टकर विषयों से विरक्त होता हुआ मन को रोककर स्वभाव में स्थित होता है, वह कर्मरूपी सांकलों से छूट जाता है।।44।।

जो प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्ध से रहित आत्मा है वही मैं हूँ, इस प्रकार चिन्तन करना चाहिए और उसमें ही स्थिर भाव को करना चाहिये।।45।।

जो केवलज्ञान व केवलदर्शन स्वभाव से युक्त, सुखस्वरूप और केवल वीर्यस्वभाव है वही मैं हूँ, इस प्रकार ज्ञानी जीव को विचार करना चाहिए।।46।।

जो जीव सर्व संग से रहित होकर अपनी आत्मा का आत्मा के द्वारा ध्यान करता है, वह थोड़े ही समय में समस्त दुःखों से छुटकारा पा लेता है।।47।।

जो भयानक संसाररूपी महासमुद्र से निकलने की इच्छा करता है वह इस प्रकार जानकर शुद्ध आत्मा का ध्यान करता है।।48।।

निजात्म भावना से प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, प्रतिहरण, धारणा, निवृत्ति, निन्दन, गर्हण और शुद्धि को प्राप्त करते हैं।।49।।

जो णिहदमोहगंठी रायपदोसे वि खविय सामण्णे।
होज्जं समसुहदुक्खो सो सोक्खं अक्खयं लहदि।।50।।
ण जहदि जो दु ममत्तं अहं ममेदं ति देहदविणेसुं।
सो मूढो अण्णाणी बज्झदि दुट्ठट्ठकम्मेहिं।।51।।
पुण्णेण होइ विहओ विहवेण मओ मएण मइमोहो।
महमोहेण य पावं तम्हा पुण्णो वि वज्जेज्जो।।52।।
परमट्ठबाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति।
संसारगमणहेदं विमोक्खहेदुं अयाणंता।।53।।
ण हु मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो त्ति पुण्णपावाणं।
हिंडदि घोरमपारं संसारं मोहसंछण्णो।।54।।
मिच्छत्तं अण्णाणं पावं पुण्णं चएवि तिविहेणं।
सो णिच्चयेण जोई झायव्वो अप्पयं सुद्धं।।55।।
जीवो परिणमदि जदा सुहेण असुहेण व सुहो असुहो।
सुद्धेण तहा सुद्धो हवदि हु परिमाणसब्भाओ।।56।।

जो दर्शन मोहरूप ग्रन्थि को नष्ट कर श्रमण अवस्था में राग-द्वेष का क्षपण करता हुआ सुख-दुःख में समान हो जाता है वह अक्षय सुख को प्राप्त करता है।।50।।

जो देह और धन में क्रमशः 'अहम्'और 'ममेदं' इस प्रकार के ममत्व को नहीं छोड़ता है वह मूर्ख अज्ञानी दुष्ट आठ कर्मों से बंधता है।।51।।

चूंकि पुण्य से विभव,विभव से मद, मद से मतिमोह और मतिमोह से पाप होता है; इसलिये पुण्य को भी छोड़ना चाहिये।।52।।

जो परमार्थ से बाहर है वे संसारगमन और मोक्ष के हेतु को न जानते हुए अज्ञान से पुण्य की इच्छा करते है।।53।।

पुण्य और पाप में कोई भेद नहीं है, इस प्रकार जो नहीं मानता है वह मोह से युक्त होता हुआ घोर एवं अपार संसार में घूमता है।।54।।

मिथ्यात्व, अज्ञान, पाप और पुण्य, इनका (मन, वचन, काय) तीन प्रकार से त्याग करके योगी को निश्चय से शुद्ध आत्मा का ध्यान करना चाहिये।।55।।

परिणामस्वभावरूप जीव जब शुभ अथवा अशुभ परिणाम से परिणमता है तब शुभ अथवा अशुभ होता है और जब शुद्ध परिणाम से परिणमता है तब शुद्ध होता है।।56।।

धम्मेण परिणदप्पा (अप्पा) जदि सुद्धसंपजोगजुदो।
पावइ णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो य सग्गसुहं।।57।।
असुहोदएण आदा कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो।
दुक्खसहस्सेहिं सदा अभिद्दुदो भमइ अच्चंतं।।58।।
अदिसयमादसमुत्थं विसयातीदं अणोवममणंतं।
अव्वुच्छिण्णं च सुहं सुद्धुवजोगप्पसिद्धाणं।।59।।
रागादिसंगमुक्को दहइ मुणी सेयझाणझाणेणं।
कम्मिंधणसंघाये अणेयभवसंचयं खिप्पं।।60।।
जो संकप्पवियप्पो तं कम्मं कुणदि असुहसुहजणणं।
अप्पासभावलद्धी जाव ण हिययये परिपुरइ।।61।।
बंधाणं च सहावं विजाणिदुं अप्पणो सहावं च।
बंधेसु जो ण रज्जदि सो कम्मविमोक्खणं कुणइ।।62।।
जाव ण णेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोण्हं पि।
अण्णाणी ताव दु सो विसयादिसु वट्टदे जीवो।।63।।

धर्म से परिणत स्वरूप आत्मा यदि शुद्ध उपयोग से युक्त होता है तब निर्वाण सुख को और शुभोपयोग से युक्त होकर स्वर्गसुख को प्राप्त करता है।।57।।

अशुभोदय से यह आत्मा कुमानुष, तिर्यंच और नारकी होकर सदा अचिन्त्य हजारों दुःखों से पीड़ित होकर संसार में अत्यन्त घूमता है।।58।।

शुद्धोपयोग से उत्पन्न अरहन्त और सिद्ध जीवों को अतिशय, आत्मोत्थ, विषयातीत, अनुपम, अनन्त और विच्छेद रहित सुख प्राप्त होता है।।59।।

रागादि परिग्रह से रहित मुनि शुक्लध्यान नामक ध्यान से अनेक भवों में संचित किये हुए कर्मरूपी ईंधन के समूह को शीघ्र जला देता है ।।60।।

जब तक हृदय में आत्मस्वभावलब्धि प्रकाशमान नहीं होती तब तक जीव संकल्पविकल्परूप शुभ-अशुभ को उत्पन्न करने वाला कर्म करता है ।।61।।

जो बन्धों के स्वभाव को और आत्मा के स्वभाव को जानकर बन्धों में अनुरंजायमान नहीं होता है वह कर्मों के मोक्ष को करता है।।62।।

जब तक आत्मा और आस्रव इन दोनों के विशेष अन्तर को नहीं जानता है तब तक वह अज्ञानी जीव विषयादिकों में प्रवृत्त रहता है ।।63।।

ज्ञानी जीव अनेक प्रकार के पुद्गल द्रव्य को जानता हुआ परद्रव्यपर्याय से न

ण वि परिणमदि ण गेण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए।
णाणी जाणंतो वि हु पोग्गलदव्वं अणेयविहं।।64।।
जो परदव्वं तु सुहं असुहं व मण्णदे विमूढमई।
सो मूढो अण्णाणी बज्झदि दुट्ठट्ठकम्मेहिं।।65।।

एवं भावणा सम्मत्ता।

अन्त्य मंगल

केवलणाणदिणेसं चोत्तीसादिसयभूदिसंपण्णं।
अप्पसरूवम्मि ठिदं कुंथुजिणेसं णमंसामि।।66।।
संसारण्णवमहणं तिहुवणभवियाण मोक्ख संजणणं।
संदरिसियसयलत्थं अरजिणणाहं णमंसामि।।67।।
भव्वजणमोक्खजणणं मुणिंददेविंदणमिदपयकमलं।
अप्पसुहं संपत्तं मल्लिजिणेसं णमंसामि।।68।।

परिणमता है, न ग्रहण करता है और न उत्पन्न होता है।।64।।

जो मूढ़मति परद्रव्य को शुभ अथवा अशुभ मानता है वह मूढ़ अज्ञानी होकर दुष्ट आठ कर्मों से बंधता है।।65।।

इस प्रकार भावना समाप्त हुई।

अन्त्य मंगल

जो केवलज्ञानरूप प्रकाश युक्त सूर्य हैं, चौंतीस अतिशयरूप विभूति से सम्पन्न और आत्मस्वरूप में स्थित हैं, उन कुंथु जिनेन्द्र को नमस्कार करता हूँ।।66।।

जो संसार-समुद्र का मथन करने वाले और तीनों लोकों के भव्य जीवों को मोक्ष के उत्पादक हैं तथा जिन्होंने सकल पदार्थों को दिखला दिया है ऐसे अर जिनेन्द्र को नमस्कार करता हूं।।67।।

जो भव्य जीवों के लिये मोक्ष प्रदान करने वाले हैं, जिनके चरण-कमलों में मुनीन्द्र और देवेन्द्रों ने नमस्कार किया है और जो आत्मसुख को प्राप्त कर चुके हैं, उन मल्लि जिनेन्द्र को नमस्कार करता हूं।।68।।

जो घातिकर्म को नष्ट करके केवलज्ञान से समस्त पदार्थों को देख चुके हैं और जो भव्य जीवों को सुख का उपदेश करने वाले हैं, ऐसे मुनिसुव्रतस्वामी को

णिट्ठवियघाइकम्मं केवलणाणेण दिट्ठसयलट्ठं।
णमह मुणिसुव्वएसं भवियाणं सोक्खदेसयरं।।69।।

घणघाइकम्ममहणं मुणिंददेविंदपणदपयकमलं।
पणमह णमिजिणणाहं तिहुवणभवियाण सोक्खयरं।।70।।

इंदसयणमिदचलणं आदसरूवम्मि सरवकालगदं।
इंदियसोक्खविमुक्कं णेमिजिणेसं णमंसामि।।71।।

कमठोपसग्गदलणं तिहुयणभवियाण मोक्खदेसयरं।
पणमह पासजिणेसं घाइचउक्कं विणासयरं।।72।।

एस सुरासुरमणुसिंदवंदिदं धोदघाइकम्ममलं।
पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं।।73।।

जयउ जिणवरिंदो कम्मबंधा अबद्धो,
जयउ जयउ सिद्धो सिद्धिमग्गासमग्गो।

नमस्कार करो।।69।।

घनघातिकर्मों का मथन करने वाले,मुनीन्द्र और देवेन्द्रों से नमस्कृत चरण-कमलों से संयुक्त तथा तीनों लोकों के भव्य जीवों को सुखदायक, ऐसे नमि जिनेन्द्र को नमस्कार करो।।70।।

सैकड़ों इन्द्रों से नमस्कृत चरणों वाले,सब काल आत्मस्वरूप में स्थित और इन्द्रिय सुख से रहित,ऐसे नेमि जिनेन्द्र को नमस्कार करता हूँ।।71।।

कमठकृत उपसर्ग को नष्ट करने वाले, तीनों लोकों सम्बन्धी भव्यों के लिये मोक्ष के उपदेशक और घातिचतुष्टय के विनाशक पार्श्व जिनेन्द्र को नमस्कार करो।।72।।

जो इन्द्र,धरणेन्द्र और चक्रवर्तियों से वंदित, घातिकर्मरूपी मल से रहित और धर्म-तीर्थ के कर्त्ता हैं, उन वर्धमान तीर्थंकर को नमस्कार करता हूं।।73।।

कर्मबन्ध से मुक्त जिनेन्द्र देव जयवन्त होवें, समग्र सिद्धिमार्ग को प्राप्त हुए सिद्ध भगवान् जयवन्त होवें, जगत् को आनन्द देने वाला प्रशस्त सूरिसमूह जयवन्त होवे और विघ्नों से रहित साधुओं का प्रबल संघ जगत् में जयवंत होवे।।74।।

जो ज्ञानरूपी परशु से भव्यों के भव-दुःख को छेदते हैं, उन भरत क्षेत्र में उत्पन्न हुए चौबीस तीर्थंकरों को नमस्कार करो।।75।।

जयउ जयअणंदो सूरिसत्थो पसत्थो,
जयउ जयदि वण्णीण उग्गसंघो य विग्घो।।74।।

पणमह चउवीसजिणे तित्थयरे तत्थ भरहखेत्तम्मि।
भव्वाणं भवदुक्खं छिंदंते णाणपरसूहिं।।75।।

पणमह जिणवरवसहं गणहरवसहं तहेव गुणवसहं।
दट्ठूणपरिसवसहं जदिवसहं धम्मसुत्तपाढए वसहं।।76।।

चुण्णिस्सरूवछक्करणसरूवपमाण होइ किं जं तं(?)।
अट्ठसहस्सपमाणं तिलोयपण्णत्तिणामाए।।77।।

एवमाइरियपरंपरागयतिलोयपण्णत्तीए सिद्धलोय-
सरूवणिरूवणपण्णत्ती णाम णवमो
महाधियारो समत्तो।।9।।

जिनवर वृषभ को, गुणों में श्रेष्ठ गणधर वृषभ को तथा परिषहों को सहन करने वाले व धर्मसूत्र के पाठकों में श्रेष्ठ यतिवृषभ को देखकर नमस्कार करो।।76।।

चूर्णिस्वरूप तथा षट्करणस्वरूप का जितना प्रमाण है, त्रिलोकप्रज्ञप्ति नामक ग्रन्थके भी प्रमाण उतना—आठ हजार श्लोक परिमित है (?)।।77।।

इस प्रकार आचार्यपरम्परा से प्राप्त हुई त्रिलोकप्रज्ञप्ति
में सिद्धलोकस्वरूप-निरूपणप्रज्ञप्ति नामक
नवमां महाधिकार समाप्त हुआ।

सिद्ध वंदना

–गणिनी ज्ञानमती

—शंभु छंद—

हे नाथ! तुम्हारे गुणमणि की, गुणमाल गूंथ कर लाये हैं।
हम आज तुम्हारे चरणों में, यह माल चढ़ाने आये हैं।।
जय जय अतीत के सिद्धों की, जय वर्तमान के सिद्धों की।
जय जय भविष्य के सिद्धों की, सब सिद्ध अनंतानंतों की।।1।।

जैसे नर कटि पर हाथ रखे, पग फैला करके खड़ा हुआ।
वैसे यह पुरुषाकार लोक, त्रैलोक्य स्वरूप विभक्त हुआ।।
त्रिभुवन के मस्तक पर ईषत्-प्राग्भारा अष्टम पृथ्वी है।
यह पूर्वापर इक राजु सात, राजू उत्तर-दक्षिण में है।।2।।

यह योजन आठ मात्र मोटी, इस भूमि मध्य है सिद्धशिला।
योजन पैंतालिस लाख प्रमित यह गोल रजतमय सिद्धशिला।।
उत्तान कटोरे[1] सम या धवलछत्र या अर्धचंद्रसम है।
यह मधि में मोटी अठ योजन, क्रम से घट के इक प्रदेश है।।3।।

इस ऊपर वातवलय त्रय हैं, दो कोस घनोदधि वातवलय।
घनवात वलय है एक कोस , फिर ऊपर में तनुवातवलय।।
यह चारशतक पच्चीस धनुष कम, एक कोस का माना है।
या पंद्रह सौ पचहत्तर धनु का यह तनुवात[2] बखाना है।।4।।

1. तन्मध्ये रूप्यमयं छत्राकारं मनुष्यक्षेत्रव्यास सिद्ध क्षेत्रमस्ति।.. अंते तनुरूपमुत्तानस्थितपात्रमिवचषकमिवेत्यर्थ...आठवीं पृथ्वी के ठीक बीच में छत्राकार मनुष्य क्षेत्र व्यास प्रमाण-4500000 योजन प्रमाण सिद्धक्षेत्र या सिद्धशिला है। यह अंत में कृश हुई है और सीधे रखे कटोरे के समान है। या धवल छत्र के समान है-उल्टे रखे हुए छत्र के समान है। त्रिलोकसार गाथा 557 की टीका का अंश।
2. तनुवातवलय 1575 धनुष है यह प्रमाणांगुल से है अतः इसके व्यवहारांगुल से व्यवहार धनुष बनाने के लिये 500 से गुणा करना है, क्योंकि मनुष्यों के शरीर की अवगाहना व्यवहार धनुष से ही है। यथा 1575 × 500 = 787500 हुआ। इसमें 1500 के भाग देने से अर्थात् 787500÷1500 = 525 धनुष हुआ। यह सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना है।

इसके व्यवहार धनुष करने को पाँच शतक से गुणा करो।
फिर पंद्रह सौ से भाजित कर पण सौ पचीस धनु प्राप्त करो।।
यह सिद्धों की उत्कृष्ट देह, दो सहस एक सौ हाथ कहा।
सबसे लघु साढ़े तीन हाथ, मध्यम सब मध्यम भेद कहा।।5।।

लघु मध्यम उत्तम अवगाहन से, सिद्ध अनंतानंत वहाँ।
तनुवातवलय के अंत भाग में, तिष्ठ रहे हैं सतत वहाँ।।
धर्मास्तिकाय के अभाव से, ये सिद्ध न आगे जा सकते ।
त्रैलोक्य गगन में चउतरफे, बस एक अलोकाकाश बसे।।6।।

ये सिद्ध सभी रस रूप गंध, स्पर्श रहित शुद्धात्मा हैं।
चिन्मय चिंतामणि कल्पवृक्ष, पारसमणि रत्न चिदात्मा हैं।।
निश्चयनय से हम सभी शुद्ध, चिन्मूरति परम चिदंबर हैं।
व्यवहार नयाश्रित संसारी, निश्चय से शुद्ध शिवंकर हैं।।7।।
निज के गुणमणि को प्रगट करें, इसलिये वंदना करते हैं।
सज्ज्ञानमती कैवल्य करो, बस यही याचना करते हैं।।
हे नाथ! तुम्हारे गुणमणि की, गुणमाल गूंथ कर लाये हैं।
हम आज तुम्हारे चरणों में, यह माल चढ़ाने आये हैं।।8।।

–दोहा–

सिद्ध अनंतानंत को, नमत मिटे दुःख शोक।
'ज्ञानमती' कलिका खिले, सुरभित हों तिहुँलोक।।9।।

प्राकृत सिद्धभक्ति (श्री कुंदकुंददेवकृत)

अट्ठविह-कम्ममुक्के, अट्ठ-गुणड्ढे अणोवमे सिद्धे।
अट्ठमपुढवि-णिविट्ठे, णिट्ठिय-कज्जेय वंदिमो णिच्चं।।1।।

तित्थयरे-दरसिद्धे, जल-थल आयासणिव्वुदे सिद्धे।
अंतयडे-दरसिद्धे, उक्कस्म-जहण्ण-मज्झिमोगाहे।।2।।

उड्ढ-मह-तिरियलोए, छव्विह-काले य णिव्वुदे सिद्धे।
उवसग्ग-णिरुवसग्गे, दीवोदहि-णिव्वुदे य वंदामि।।3।।

पच्छायडेय सिद्धे, दुग-तिग-चदुणाण-पंच चदुर-जमे।
परिपडिदा-परिपडिदे, संजम-सम्मत्त-णाण-मादीहिं।।4।।

साहरणा-साहरणे, सम्मुग्घादेदरे य णिव्वादे।
ठिदपलियंक-णिसण्णे, विगयमले परमणाणगे वंदे।।5।।

पुंवेदं वेदंता, जे पुरिसा खवगसेढि मारुढा।
सेसोदयेण वि तहाज्झाणु-वजुत्ता य ते हु सिज्झंति।।6।।

पत्तेयसयंबुद्धा, बोहियबुद्धा, य होंति ते सिद्धा।
पत्तेयं पत्तेयं, समये समयं पणिवदामि सदा।।7।।

पण-णव-दु अट्ठवीसा चउतिय-णवदी य दोण्णि पंचेव।
वावण्णहीण-वियसय-पयडिविणासेण होंति ते सिद्धा।।8।।

अहसय-मव्वावाहं, सोक्ख-मणंतं अणोवमं परमं।
इंदियविसयातीदं, अप्पत्तं अच्चवं च ते पत्ता।।9।।

लोयग्ग-मत्थयत्था, चरम-सरीरेण ते हु किंचूणा।
गयसित्थ-मूसगब्भे, जारिस-आयार तारिसायारा।।10।।

जर-मरण-जम्मरहिया, ते सिद्धा मम सुभत्ति-जुत्तस्स।
दिंतु वरणाण-लाहं, बहुयण-परिपत्थणं परमसुहं।।11।।

किच्चा काउस्सग्गं, चउरट्ठय-दोसविरहियं सुपरिसुद्धं।
अइभत्ति-संपउत्तो, जो वंदइ लहु लहइ परमसुहं।।12।।

–अंचलिका–

इच्छामि भंते! सिद्धभक्ति-भक्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाणसम्मदंसण सम्मचारित्तजुत्ताणं, अट्ठविह-कम्मविप्पमुक्काणं अट्ठगुण-संपण्णाणं उड्ढलोय-मत्थयम्मि पयट्ठियाणं, तवसिद्धाणं णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं चरित्तसिद्धाणं, अतीताणागद-वट्टमाणकालत्तयसिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

पद्यानुवाद—शंभुछंद (गणिनी ज्ञानमती)

श्री सिद्धचक्र सब आठ कर्म, विरहित औ आठ गुणों युत हैं।
अनुपम हैं सब कार्य पूर्ण कर, अष्टम पृथ्वी पर स्थित हैं।।
ऐसे कृतकृत्य सिद्धगण का, हम नितप्रति वंदन करते हैं।
मन वचन काय की शुद्धी से, शिरसा अभिनन्दन करते हैं।।1।।
तीर्थंकर होकर सिद्ध हुए, बिन तीर्थंकर जो सिद्ध हुए।
जल से थल से जो सिद्ध हुये, जो भी आकाश से सिद्ध हुए।।
जो हुए अंतकृत केवलि या, बिन हुए सिद्धि को प्राप्त हुए।
उत्तम जघन्य मध्यम तनु की, अवगाहन धर जो सिद्ध हुए।।2।।
जो ऊर्ध्वलोक औ अधोलोक, औ तिर्यक् लोक से सिद्ध हुए।
उत्सर्पिणि अवसर्पिणि के भी, छह कालों से जो सिद्ध हुए।।
उपसर्ग सहन कर सिद्ध हुए, उपसर्ग बिना भी सिद्ध हुए।
उन सबको वंदू ढाई द्वीप, दो समुद्र से जो सिद्ध हुए।।3।।
मति श्रुत से केवलज्ञान प्राप्त, या तीन ज्ञान या चार सहित।
केवलज्ञानी हो सिद्ध हुए, पाँचों संयम या चार सहित।।
संयम समकित ज्ञानादि से च्युत हो, पुनः ग्रहणकर सिद्ध हुए।
जो संयम समकित ज्ञान आदि, से बिना पतित हो सिद्ध हुए।।4।।
जो साधु संहरण सिद्ध बिना, संहरण प्राप्त हो सिद्ध हुए।
जो समुद्घात कर सिद्ध हुए, बिन समुद्घात भी सिद्ध हुए।।

खड्गासन और पर्यंकासन से, कर्म नाश कर सिद्ध हुए।
उन परम ज्ञानयुत सिद्धों को, मैं वंदूँ त्रिकरण शुद्धि किये।।5।।

जो भाव पुरुषवेदी मुनिवर, वर क्षपक श्रेणि चढ़ सिद्ध हुए।
जो भावनपुंसक वेदी भी ये, पुरुष ध्यान धर सिद्ध हुए।।
जो भाववेद स्त्री होकर भी, द्रव्य पुरुष अतएव उन्हें।
हो शुक्लध्यान सिद्धि जिससे, सब कर्म नाश कर सिद्ध बने।।6।।

प्रत्येक बुद्ध और स्वयंबुद्ध, औ बोधित बुद्ध सुसिद्ध बने।
उन सबको पृथक्-पृथक् प्रणमूँ, औ एक साथ भी नमूँ उन्हें।।
पण नव दो अट्ठाईस-चार, तेरानवे दो औ पाँच प्रकृति।
इक सौ अड़तालिस प्रकृति नाश, सब सिद्ध हुए प्रणमूं नितप्रति।।7।।

जो अतिशय अव्याबाध सौख्य, औ अनंत अनुपम परम कहा।
इन्द्रिय विषयों से रहित पूर्व, अप्राप्त ध्रौव्य को प्राप्त किया।।
लोकाग्रशिखर पर स्थित वे, अंतिम तनु से किंचित् कम हैं।
गल गया मोम सांचे अंदर, आकार सदृश आकृति धर हैं।।8।।

वे जन्म मरण औ जरा रहित, सब सिद्ध भक्ति से नुति उनको।
बुधजन प्रार्थित औ परम शुद्ध, वर ज्ञानलाभ देवो मुझको।।
बत्तिस दोषों से रहित शुद्ध, जो कायोत्सर्ग विधी करके।
अतिभक्तीयुत वंदन करते, वे तुरतहिं परम सौख्य लभते।।9।।

अंचलिका (चौबोल छंद)

हे भगवन्! श्री सिद्ध भक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसका।
आलोचन करना चाहूँ, जो सम्यग्रत्नत्रय युक्ता।।
अठविध कर्मरहित प्रभु ऊर्ध्वलोक मस्तक पर संस्थित जो।
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयम सिद्ध चरित सिध जो।।10।।
भूत भविष्यत् वर्तमान, कालत्रय, सिद्ध सभी सिद्धा।
नित्यकाल मैं अर्चूं पूजूँ, वंदूँ नमूँ भक्ति युक्ता।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।11।।

प्रशस्ति

–दोहा–

महाकल्पद्रुम वीर प्रभु, फल अचिन्त्य दातार।
महावीर भगवान को, नमूं अनन्तों बार।।1।।

वीर दिव्यध्वनि श्रवण कर, द्वादशांग करतार।
गौतम गणधर ग्रंथकृत्, नमूं उन्हें शत बार।।2।।

श्री वीरशासन प्रथित, कुंदकुंद आचार्य।
मूलसंघ में नाम से, कुंदकुंद आम्नाय।।3।।

गच्छ सरस्वती गण कहा, बलात्कार शुभ मान्य।
चारितचक्री प्रथम गुरू, शांतिसागराचार्य।।4।।

उनके पट्टाचार्य गुरू, वीरसागराचार्य।
महाव्रत दातागुरू, नमूं उभय आचार्य।।5।।

वीर संवत् पच्चीस सौ, ब्यालिस जग अभिवंद्य।
कार्तिक शुक्ला द्वादशी, किया संकलित ग्रंथ।।6।।

श्री गौतम गणधर वचन, चतुर्थ कालिक जान।
ग्रंथ संकलित सिद्ध शिला और सिद्ध भगवान।।7।।

मांगीतुंगी तीर्थ पर ऋषभदेव उद्यान।
ऋषभदेव जिनधाम में, यह संकलन महान।।8।।

अमृतवर्षाकारिणी, गौतमस्वामी वाणि।
अमृतपद देवे हमें, यह संकलिता वाणि।।9।।

जब तक जिनवर धर्म है, जग में सुखकर पूर्ण।
तब तक 'कृति' स्थायि हो, करे ज्ञानमति पूर्ण।।10।।

सिद्धशिला पर राजते, सिद्ध अनंतानंत।
सिद्ध त्रिकालिक को नमूँ, पाऊँ सौख्य अनंत।।11।।